आत्मा की चार अवस्था_जाग्रत_स्वप्न_सुषुप्ति_तुरीय

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

महाराजा रावण ने महर्षि कुक्कुट मुनि महाराज से कहा मेरा अन्तरात्मा अशान्त हो रहा है। मुनिवरों! राजा व ऋषि की चर्चाएं प्रारम्भ होने लगी। उन्होंने कहा प्रभु! मैं आत्मा को जानना चाहता हूँ, यह आत्मा क्या है?

सर्वं ह्येतद्ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात् ॥ माण्डुक्योपनिषद १.२

पदार्थः (सर्वं) सब (हि) निश्चय करके (एतत्) यह (ब्रह्म) परमात्मा है (अयमात्मा) यह जो मेरे भीतर व्यापक है (ब्रह्म) परमात्मा है (सो) इसलिए (अयमात्मा) यह आत्मा (चतुष्पात्) चार भागों वाला है।

आत्मा की चार अवस्था_जाग्रत_स्वप्न_सुषुप्ति_तुरीय

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

मेरे प्यारे! प्रातः कालीन क्रियाओं से निवृत्त हो करके मुनिवरों! देखो, राम ने कहा कहो, देवी! रात्रि तुम्हारी कैसी संपन्न हुई है? सीता ने कहा प्रभु! मेरी रात्रि बड़ी प्रियता में और प्रभु की गोद में मेरी रात्रि समाप्त हो गई। मानो देखो, रात्रि में प्रभु का प्रायः चिन्तन करना चाहिए। क्योंकि रात्रि अहिल्या है और अहिल्या की गोद में मानव विद्यमान हो करके, प्रभु का स्मरण करना चाहिए। मेरी रात्रि, प्रभु! मानो देखो, उस अहिल्या की गोद में और प्रभु के आनन्द में मानो उसकी प्रार्थना में मेरी रात्रि संपन्न हो गई। और मेरे प्यारे! देखो, सीता ने कहा कहो भगवन! आप की रात्रि कैसी संपन्न हुई? तो उस समय राम ने कहा देवी! मेरी रात्रि ऐसी सम्पन्न हुई है क्या मानो देखो, यह जो जगत है यह मन में और मन, बुद्धि में और बुद्धि, चित्त में और मानो चित्त के मण्डल में यह मन विश्राम कर रहा है। हे देवी! यह तुम्हें प्रतीत है क्या, देखो, चित्त का मण्डल है, अहंकार का मण्डल है उन दोनों मण्डलों में यह मन स्थिर हो जाता है और स्थिर हो करके यह मानव ऐसे, हम बेसुध हो जाते हैं कि संसार का ज्ञान नहीं रहता। प्राणं भविते देवं ब्रह्मा हे देवी! मैंने अध्ययन किया है, गुरुदेव के चरणों में विद्यमान हो करके, माता अरूणधती मुझे वर्णन कराती रहती थीं, क्या मानो देखो, यह जो प्राणं ब्रह्मे जब मन, बुद्धि, चित्त, अंहकार अपनी साम्यावस्था में चला जाता है तो हे देवी! मानो देखो, यह प्राण आत्मा के साथ जागरुक रहता है, जो गति बनी रहती है। यह गतिवान बना रहता है। मानो देखो, वह अपने में आनन्द को अनुभव करता है।

मेरे प्यारे! जिस समय मानव का मन, यह निद्रा की गोद में चला जाता है अरे, कौन जागता है? उस समय यह प्राण आत्मा के साथ जागरुक रहता है,

यह जागता है, यह गति बनाए रहता है, यह श्वास की गति बनी रहती है। मेरे प्यारे! देखो, मानव अपने में अपने को समेट लेता है।

तो मुनिवरों! देखो, जब माता सीता और राम ने जब यह चर्चाएँ की, तो बेटा! दोनों मानो देखो, विचार विनिमय करते हुए और लक्ष्मण के समीप पहुँचे। राम ने कहा कहो, लक्ष्मण जी! रात्रि कैसी सम्पन्न हुई? तो मुनिवरों! देखो, लक्ष्मण ने कहा हे प्रियवर! हे भगवन! मेरी रात्रि आपके चरणों में व्यतीत हो गई है, क्योंकि जो संसार में सेवक होता है, चाहे वह माता का सवेक हो, चाहे वह विधाता, पितर का सेवक हो, उसका तो प्रत्येक क्षण मानो देखो, सेवा में व्यतीत हो जाता है। आज मेरी जो रात्रि गई है। वह अहिल्या रात्रि है, और चरणों की पादुका तुम्हारी है, और माता का मुझे स्नेह प्राप्त हो रहा है, उसमें मानो देखो, मेरी रात्रि समाप्त हो गई है, सम्पन्न हो गई है।

तो मैंने ऋषि मुनियों के मध्य में यह संकल्प किया था कि मैं इस संकल्प को नष्ट नहीं कर सकूंगी। क्योंकि संकल्प में ही सर्वत्र ब्रह्मांड है। यह जो प्राण रूपी संकल्पों से यह संसार गुथा हुआ है, यह जो एक दूसरे में ही दृष्टिपात हो रहा है। देखो, ! सूर्य अपना प्रकाश दे रहा है, सूर्य से चंद्रमा प्रकाशित हो रहा है। चंद्रमा अमृत देता है तो सूर्य तेज देता है। माता वसुंधरा है। पृथ्वी पर जहाँ सूर्य का प्रकाश आता है, वह अपने में प्रकाश को सींच करके अपने में नाना प्रकार का खनिज दे रही है। उसी प्रकार यह वायु गति कर रहा है। अग्नि उसमें समाहित हो रही है। वायु प्राण दे रहा है तो अग्नि तेज दे रही है। मेरे प्यारे! विदुषी कहती है कि यह तो संसार एक दूसरे में गुथा हुआ है। यह एक दूसरे में संकल्पित हो रहा है। तो जब संकल्प में दुनिया, संसार रमण कर रही है तो प्रभु! मेरे संकल्प को क्यों नष्ट करना चाहते हो? मैं अपने संकल्प को नष्ट नहीं करना चाहती, क्योंकि मेरा यह संकल्प बन गया है।

जब यह वार्त्ता प्रकट होती रही तो ऋषि मौन हो गया और ऋषि से कहा,

प्रभु! आप मौन हो गएं हैं। माता अरुणधती और आपका किसी काल में संस्कार हुआ था, और संस्कार में एक संकल्प होता है और उस संकल्प से ही पति और पत्नी बनते हैं। उस संकल्प मात्र से ही तुम्हारा जीवन अखंड ज्योति वाला बन गया है। उसी में पितर याग गुथा हुआ है उसी संकल्प में पति और पत्नी वाद है। उसी संकल्प में गृह वाद है। उसी संकल्प में राष्ट्रवाद कहलाता है। तो हे प्रभु! मैं आपकी आज्ञा का पालन कर सकती हूँ। परन्तु यह मेरा दुर्भाग्य है, मैं आपकी आज्ञा का पालन नहीं कर रही हूँ। क्यों नहीं कर रही? क्योंकि संकल्प नष्ट हो गया तो संसार समाप्त हो जाएगा। संकल्प चला गया तो संसार चला गया, संसार न रहा। माता माता नहीं रहेंगे, पुत्र पुत्र नहीं रहेगा, यदि संकल्प नहीं रहेगा। तो इसलिए भगवन्! मेरे संकल्प को ज्यों का त्यों रहने दीजिए। इसी में मेरा जीवन है। इसी में मेरी आभा है। हां, संकल्प मैं उस काल में नष्ट कर सकती हूँ जबकि माता अरुणधती और आप अपने संकल्प को नष्ट कर दें। अब न माता, न पत्नी भाव में रहे और न पति भाव में रहें, दोनों की विकल्पता हो जाए तो मैं भी अपने संकल्प को नष्ट कर दूंगी।

जाग्रत, स्वपन्नावस्था व सुषुप्ति

ओ३म् यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवन्तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरङ्गमज्ज्योतिषाज्ज्योतिरेकन्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ यजुर्वेद ३४.१

मनो देवता, विराट् त्रिष्टुप्, धैवतः।

पदार्थः हे जगदीश्वर वा राजन्! आपकी कृपा से (यत्) जो (दैवम्) आत्मा में रहने वा जीवात्मा का साधन (दूरङ्गमम्) दूर जाने, मनुष्य को दूर तक ले जाने वा अनेक पदार्थों का ग्रहण करने वाला (ज्योतिषाम्) शब्द आदि विषयों के प्रकाशन श्रोत्र आदि इन्द्रियों को (ज्योतिः) प्रवृत्त करने हारा (एकम्) एक (जाग्रतः) जागृत अवस्था में (दूरम्) दूर-दूर (उत्, ऐति) भागता है (उ) और

(तत्) जो (सुप्तस्य) सोते हुए का (तथा, एव) उसी प्रकार (एति) भीतर अन्तःकरण में जाता है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) सङ्कल्प-विकल्पात्मक मन (शिवसङ्कल्पम्) कल्याणकारी धर्म विषयक इच्छावाला (अस्तु) हो॥

तद्यथा महामत्स्य उभे कूले अनुसञ्चरति पूर्वं चापरं चैवमेवायं पुरुष एतावुभावन्तावनुसञ्चरति स्वप्नान्तं च बुद्धान्तं च॥ बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.१८

पदार्थः (याज्ञ०-तत् यथा महामत्स्यः) सो जैसे बड़ा मच्छ (पूर्वम् च अपरं उभे कूले) पहले व दूसरे दोनों किनारों को (अनुसंचरति) आता-जाता रहता है (एवम् एव अयम् पुरुषः) इसी तरह यह पुरुष (जीव) (स्वप्नान्तम् बुद्धान्तम् च एतौ) स्वप्न और जागरण इन (उभौ अन्तौ अनुसंचरति) दोनों में आता-जाता रहता है।

यत्र वा अन्यदिव स्यात्तत्रान्योऽन्यत्पश्येदन्योऽन्यज्जिघ्रेदन्योऽन्यद्रसयेदन्योऽन्यद्वदेदन्योऽन्यच्छृणुयादन्योऽन्यन्मन्वीतान्योऽन्यत्स्पृशेदन्योऽन्यद्विजानीयात्॥ बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.३१

पदार्थः (याज्ञ०-यत्र वै) निश्चय जिस जागृत या स्वप्न में (अन्यत् इव स्यात्) अन्य (स्वयं से भिन्न वस्तु) ही हो (यत्र अन्यः अन्यत् पश्येत्) उस दशा में अन्य अन्य को देखें (अन्यः अन्यत् जिघ्रेत्) अन्य अन्य को सूंघे (अन्यः अन्यत् रसयेत्) अन्य अन्य को चक्खे, (अन्यः अन्यत् वदेत्) अन्य अन्य को बोले (अन्यः अन्यत् श्रणुयात्) अन्य अन्य को सुने, (अन्यः अन्यत् स्पृशेत्) अन्य अन्य को स्पर्श करे, (अन्यः अन्यत् विजानीयात्) अन्य अन्य को जाने।

स वा एष एतस्मिन्स्वप्नान्ते रत्वा चरित्वा दृष्ट्वैव पुण्यं च पापं च पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्याद्रवति बुद्धान्तायैव॥ बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.३४

पदार्थः (याज्ञ०-वै सः एष एतस्मिन्) निश्चय सो वह (जीव) इस (स्वप्नान्ते रत्वा

चरित्वा) स्वप्नान्त में क्रीड़ा व विचरण कर, (पुण्यं च पापं च दृष्ट्वा) पाप-पुण्य को देखकर (पुनः प्रतिन्यायं) फिर उल्टा जहाँ से गया था (योनिम् आद्रवति प्रति) उसी स्थान को दौड़ता है, अर्थात् (बुद्धान्तायैव) पुनः जाग्रत अवस्था में आता है।

जागरितस्थानो बहिःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः ॥ माण्डुक्योपनिषद १.३

पदार्थः (जागरितस्थानः) जागने की दशा अर्थात् स्थूल शरीर जिसका स्थान है (बहिःप्रज्ञः) जिसकी बुद्धि बाहर की ओर काम करती है (सप्तांगः) सात जिसके अङ्ग हैं (एकोनविंशतिमुखः) उन्नीस जिसके मुख हैं (स्थूलभुक्) जो स्थूल विषयों को भोगता है (वैश्वानरः) जो सपूर्ण नरों को भोगने वाला है (प्रथमः पादः) प्रथम पाद है।

आत्मा की चार अवस्था_जाग्रत_स्वप्न_सुषुप्ति_तुरीय

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

जाग्रत अवस्था

तो मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने महात्मा कुक्कुट मुनि महाराज ने कहा हे रावण! न तो यह आत्मा जाग्रत है, न सुषुप्ति और न स्वप्न है, यह एक रस रहने वाली चेतना है। हे राजन! मानो जब यह मानव जागरूक रहता है तो मानव नेत्रों से संसार को दृष्टिपात करता है और मन उन नेत्रों की आभा की ज्योति का विभाजन करता रहता है। एक मानव अपने कुटुम्ब का परिचय दे रहा है, यह मेरी माता है, यह पिता है, यह महापिता है यह पड़पिता है, यह पुत्री है, यह माता है, यह महामाता है। परिचय दे रहा है, नेत्र दृष्टिपात कर रहे है और मन उनके रूपों को बेटा! विभाजन कर रहा है। मन संसार में एक ऐसा है, जो संसार का विभाजन करता है।

मेरे प्यारे! एक वैज्ञानिक है वह मानो देखो, आकाश गंगा में जा रहा है। आकाश गंगा बेटा! अन्तरिक्ष के गर्भ में बेटा! अपनी विचारधारा को ले जाता है। यह मन उसके साथ है। यह मानो देखो, गणना करता है। यह सप्तर्षि मण्डल है, यह ध्रुव है, यह स्वाति है, यह रोहिणी केतु है, यह मानो गन्धर्व है, यह सूर्य है, यह चन्द्रमा है। मुनिवरों! देखो, निर्णय देता है यह पुष्य नक्षत्र इत्यादि, यह एक सौर मण्डल बना हुआ है। तो यह कहाँ से मुनिवरों! देखो, विभाजन कर रहा है। यह मङ्गल है, यह सम्बन्ध प्रतिभा कहलाती है। यह मन के द्वारा, मन ही इस संसार का विभाजन कर रहा है। मेरे प्यारे! जितना भी विभाजन हो रहा है, विभक्त क्रिया चल रही है, चाहे वह पृथ्वी के गर्भ में हो, चाहे वह लोक लोकान्तरों में हो, मेरे प्यारे! वह सर्वत्र मन की कहलाती है। मानो जैसे विश्वभान मन इस पृथ्वी के गर्भ में रहता है, परन्तु जितना भी रसों

का स्वादन है, रसों का विभाजन है वह पृथ्वी के गर्भ में बेटा! मन ही कर रहा है।

प्राणाग्नय एवैतस्मिन्पुरे जाग्रति । गार्हपत्यो ह वा एषोऽपानो व्यानोऽन्वाहार्यपचनो यद्गार्हपत्यात्प्रणीयते प्रणयनादाहवनीयः प्राणः॥ प्रश्नोपनिषद ४.३

पदार्थः (प्राणाग्नयः) जीवन प्रकाशक प्राण। (एव) है। (एतस्मिन्) इस नव द्वार वाले। (पुरे) नगर में अर्थात् शरीर में। (जाग्रति) जागते हैं। (गार्हपत्या) विवाहिता स्त्री का स्वामी जिस अग्निहोत्रकी अग्नि को स्थिर करता है। (ह) निश्चय। (वा) यह। (अपानः) अपान वायु। (व्यानः) व्यानु वायु। (अन्वाहार्य पवनः) दक्षिणाग्नि जो शरीर के भोजन को पचाती है। (यत्) जो (गाहपत्यात्) जो गृहस्थाश्रम में स्थित अग्नि है। (प्रणीयते) सबन्ध रखता है। (प्रणयनाद्) सबन्ध से या कारण से। (आहवनीयः) ब्रह्मचर्याश्रम की अग्नि जिसको अग्निहोत्र के लिए ब्रह्मचारी स्थिति करता है। (प्राणः) प्राणवायु है।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

स्वप्नावस्था

तो विचार विनिमय क्या, इन वाक्यों को मैं गम्भीर नहीं ले जाऊंगा, केवल तुम्हें परिचय करा रहा हूँ ऋषि ने कहा हे रावण! यह मन संसार का विभाजन कर रहा है। पिता और पुत्री का जो विभाजन हो रहा है, वह केवल मन के कारण है। क्योंकि मन यह मानो देखो, ज्ञान का प्रतिनिधि कहलाता है, ज्ञान का प्रतिनिधि होने से मानो देखो, यह अपनी आभा में परणित हो रहा है। तो मेरे प्यारे! वेद के आचार्य ने कहा हे राजन्! न तो यह आत्मा जाग्रत है क्योंकि जो यह विभक्त क्रिया हो रही है, यह नेत्रों के साथ में, यह मन इसके पिछले विभाग में विद्यमान रहता है। नेत्रों ने दृष्टिपात किया और उस दृष्टि का विभाजन मुनिवरों! मानो देखो, यह मन एक क्षण समय नहीं लगने देता, यह विभाजन कर देता है। संसार का विभाजन कर देता है। मेरे पुत्रों! देखो, जब उन्होंने यह कहा कि यह जो मनं ब्रह्मे देखो, यह जागरूक में, मन के प्रकाश में मुनिवरों! देखो, यह आगे मन के विभक्त क्रिया से बेटा! मन विभाजन कर रहा है।

तो मेरे प्यारे! ऋषि ने कहा हे राजन! यह आत्मा स्वप्न है, मानो स्वप्न अवस्था में, इस मानो बेटा! संसार का निर्माण कर रहा है। इस मानव शरीर में नद, नदियाँ नहीं है, समुद्र नहीं है, परन्तु नद, नदियों का यह निर्माण कर रहा है। समुद्रों का निर्माण कर रहा है। पत्नी नहीं है, पत्नीयों का निर्माण कर रहा है, पति नहीं है, पतियों का निर्माण कर रहा है, राष्ट्र नहीं है, परन्तु राष्ट्रों का निर्माण कर रहा है। यह मन बेटा! ऐसा विचित्र है मानो यह स्वप्न अवस्था में, अङ्कुर रूप से बेटा! संस्कार बनते है, उन संस्कारों को यह स्वप्न में साकार रूप बना करके भोक्ता बन जाता है। यह भोग रहा है, भोक्ता बना हुआ है। तो

मुनिवरों! देखो, यह मन, यह स्वप्नं ब्रहे यह आत्मा के प्रकाश में संसार का भोक्ता बन रहा है। मानो यह संसार को दृष्टिपात कर रहा है। मेरे पुत्रों! नद, नदियों के निर्माण कर रहा है, यह आत्मा के प्रकाश को ले करके, यदि आत्मा का प्रकाश नहीं रहेगा तो यह मन विभाजन भी नहीं करेंगा। यह स्वप्न अवस्था भी नहीं रहेगी, तो मेरे पुत्रों! विचार आता रहता है, दर्शनों से, वेद के मन्त्रों का अध्ययन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि मन बड़ा विचित्र है और यह आत्मा के प्रकाश में अपना कार्य, क्रियाकलाप कर रहा है। मेरे पुत्रों! ऋषि ने कहा हे राजन्! यह आत्मा मानो स्वप्न अवस्था नहीं है और यह सुषुप्ति भी नहीं है।

स्वप्नावस्था

स्वप्नस्थानोऽन्तःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक्तैजसो द्वितीयः पादः ॥ माण्डुक्योपनिषद १.४

पदार्थः (स्वप्नस्थानः) स्वप्न अवस्था (अन्तःप्रज्ञः) भीतर की ओर है बुद्धि जिसकी (सप्ताङ्गः) सात अङ्ग हैं (एकोनविंशतिमुखः) उन्नीस जिसके मुख हैं (प्रविविक्तभुक्) ब्राह्य विषयों के न होने पर भोगने वाली है (तैजसः) तैजसनाम वाला आत्मा (द्वितीयः) दूसरा पाद है।

अथ हैनं सौर्यायणी गार्ग्यः पप्रच्छ भगवन्नेतस्मिन्पुरुषे कानि स्वपन्ति कान्यस्मिञ्जाग्रति कतर एष देवः स्वप्नान्पश्यति कस्यैतत्सुखं भवति कस्मिन्नु सर्वे सम्प्रतिष्ठिता भवन्तीति ॥ प्रश्नोपनिषद ४.१

पदार्थः (अथ) कौशल्य के प्रश्न का उत्तर सुनने के पश्चात् (ह) प्रथम कथा को चलाने के लिये (एन) उस पिप्पलाद ऋषि को (सौययिणी) सूर्य के पोते का लड़का। (गार्ग्यः) गर्ग गोत्र में उत्पन्न हुआ। (पप्रच्छः) पूछा। (भगवान्) हे गुरु महाराज। (एतस्मिन् पुरुष) इस शरीर के भीतर सोते अर्थात् प्राणेन्द्रिय और

मनादि में। (कानि) कौन। (स्वपन्ति) सोते हैं। (कानि) कौन। (अस्मिन्) इस शरीर के भीतर वाले प्राणेन्द्रियों में। (जाग्रति) जागता है। (कुत्र) कहां। (एष) यह। (देवः) देवता। (स्वप्नान्) स्वप्न को। (पश्यति) देखता है। (कस्य) किसको (एतत्) यह। (सुख) सुख। (भवति) होता है। (कस्मिन्) किसमें। (नु) और (सर्वे) सब। (सप्रतिष्ठिता) ठीक प्रकार स्थित। (भवन्ति) होते हैं। (इति) यह प्रश्न है।

अत्रैष देवः स्वप्ने महिमानमनुभवति । यद्दृष्टं दृष्टमनुपश्यति श्रुतं श्रुतमेवार्थमनुश्रृणोति देशदिगन्तरैश्च प्रत्यनुभूतं पुनः पुनः प्रत्यनुभवति दृष्टं चादृष्टं च श्रुतं चाश्रुतं चानुभूतं चाननुभूतं च सच्चासच्च सर्वं पश्यति सर्वः पश्यति ॥ प्रश्नोपनिषद ४.५

पदार्थः (अत्र) यहां। (एषः) यह। (देवः) प्रकाशक जीवात्मा। (स्वप्ने) स्वप्न में। (महिमानम्) अपनी महिमा को। (अनुभवति) अनुभव करता है, जानता है। (यत्) जो। (दृष्ट दृष्ट) देखा हुआ है और इसको देखता हुआ। (अनुपश्यति) मालूम करता है अर्थात् मित्र, शत्रु, स्त्री, पुत्र इत्यादि को प्रत्यक्ष की भांति मालूम करता है। (श्रुतं) सुनते हुए। (एव) ही। (अर्थम्) अर्थ को एक बार जिसके देखा या सुना है, बार-बार। (अनुश्रृणोति) फिर सुनता है। (देश दिगन्तरैश्च) दूसरे देश और दूसरी दिशा की वस्तुओं को। (प्रत्यनुभुत) अनुभव किये हुए की। (पुनः पुनः) बार-बार। (प्रत्यनुभुवति) अनुभव करता है अर्थात् जानता है। (दृष्टं चादृष्टं) चाहे इस कारण देखने योग्य हो या न हो। (श्रुतंचाश्रुतंच) चाहे इस जन्म में सुना हो चाहे इस जन्म में न सुना हो। (अनुभूतं चाननुभूतं) चाहे इस जन्म में उसका अनुभव किया हो अथवा न किया हो। (सच्चासच्च) चाहे वह सत् हो या न हो। (सर्व) सबको। (पश्यति) देखता है। (सर्व) सब तरह की वस्तुओं को। (पश्यति) देखता है।

न तत्र रथा न रथयोगा न पन्थानो भवन्त्यथ रथान्रथयोगान्पथः सृजते न तत्रानन्दा

मुदः प्रमुदो भवन्त्यथानन्दान्मुदः प्रमुदः सृजते न तत्र वेशान्ताः पुष्करिण्यः स्रवन्त्यो भवन्त्यथ वेशान्तान्पुष्करिणीः स्रवन्तीः सृजते स हि कर्ता॥ बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.१०

पदार्थः (याज्ञ०-तत्र रथाः न भवन्ति) उस स्वप्नावस्था में न रथ होते हैं, (न रथयोगाः न पन्थानः) न रथ के घोड़े आदि, न मार्ग (अथ रथान् रथयोगान्) किन्तु रथों, रथ के घोड़ों आदि (पथः सृजते) और मार्गों को उत्पन्न कर लेता है (तत्र आनन्दाः मुदः प्रमुदः भवन्ति) उस स्वप्न में आनन्द और मोद-प्रमोद नहीं होते। (अथ आनन्दान् मुदः प्रमुदः सृजते) (पर स्वप्नद्रष्टा) आनन्द, मोद प्रमोद को पैदा (सृजते) कर लेता है (तत्र वेशान्ताः पुष्करिण्यः) उस (स्वप्न) में तालाब, झील (स्रवन्त्यः न भवन्ति) और नदियाँ नहीं होतीं (अथ वेशान्तान् पुष्करिण्यः) (पर यह जीव) तालाब झील (स्रवन्तोः सृजते) और नदियों को बना लेता है। (हि सः कत्र्ता) क्योंकि जीव ही (सब का) कत्र्ता है। व्याख्या-उस स्वप्नावस्था में द्रष्टा जीवात्मा कल्पित रीति से रथ आदि आनन्द, मोद-प्रमोद और तालाब झील आदि के यथार्थ में न होने से इन सब को बना लिया करता है, क्योंकि उसका कर्ता वही होता है।

तदेते श्लोका भवन्ति । स्वप्नेन शारीरमभिप्रहत्यासुप्तः सुप्तानभिचाकशीति । शुक्रमादाय पुनरैति स्थानं हिरण्मयः पुरुष एकहंसः॥ बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.११

पदार्थः (याज्ञ०-तत् एते श्लोकाः) उस (विषय) में ये श्लोक (भवन्ति) (प्रमाण) होते हैं। (स्वप्नेन शारीरं) स्वप्न के द्वारा शरीर सम्बन्धित (अभिप्रहत्य) (इन्द्रियादियों) को निश्चेष्ट बना (असुप्तः सुप्तान्) न सोता जीवात्मा सोये इन्द्रियों को (अभिचाकशीति) सब ओर से देखता है। (हिरण्मयः पुरुषः एकहंसः) वह ज्योतिर्मय पुरुष अकेला ही (शुक्रम् आदाय) (इन्द्रियों के) तेज को लेकर (पुनः स्थान एति) फिर (जागृति) स्थान को जाता है।

स वा एष एतस्मिन्सम्प्रसादे रत्वा चरित्वा दृष्ट्वैव पुण्यं च पापं च । पुनः प्रतिन्यायं

प्रतियोन्याद्रवति स्वप्नायैव स यत्तत्र किञ्चित्पश्यत्यनन्वागतस्तेन भवत्यसङ्गो ह्ययं पुरुष इत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य सोऽहं भगवते सहस्रं ददाम्यत ऊर्ध्वं विमोक्षायैव ब्रूहीति॥ बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.१५

पदार्थः (याज्ञ०-वै सः एषः) निश्चय सो यह (जीवात्मा) (एतस्मिन् सम्प्रसादे) इस सम्प्रसाद (गहरी नींद) में (जाता है, और स्वप्नावस्था में) (रत्वा चरित्वा पुण्यं च) क्रीड़ा कर विचरता, (पापं दृष्ट्वा एव) भले-बुरे को देखता (गाढ़ नींद में जाता है) (पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोनि) फिर लौटने को जिस योनि से गया (स्वप्न) (स्वप्नायैव आद्रवति) उसी स्वप्न को लौटता है, (तत्र सः यत् किंचित पश्यति) वहाँ वह जो कुछ देखता है (तेन अनन्वागतः) उससे लिप्त नहीं होता (हि अयं पुरुषः असंग इति) क्योंकि यह पुरुष असंग है। (जनक-याज्ञवल्क्यः एतत्) जनक-हे मुने याज्ञवल्क्य! यह (एवम् एव सः अहं भगवते) ऐसा ही हे। सो मैं भगवान् को (सहस्रं ददामि) एक हजार (गाएँ) देता हूँ। (अतः ऊर्ध्वम् विमोक्षाय) इससे आगे बन्धन से छूटने (ब्रूहि एति) के लिए उपदेश करें।

स वा एष एतस्मिन्स्वप्ने रत्वा चरित्वा दृष्ट्वैव पुण्यं च पापं च पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्याद्रवति बुद्धान्तायैव स यत्तत्र किञ्चित्पश्यत्यनन्वागतस्तेन भवत्यसङ्गो ह्ययं पुरुष इत्येवमेवैतद्याज्ञवल्क्य सोऽहं भगवते सहस्रं ददाम्यत ऊर्ध्वं विमोक्षायैव ब्रूहीति ॥ बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.१६

पदार्थः याज्ञवल्क्य-निश्चय से वह (जीव) इस गहरी नींद में (जाता है और स्वप्नावस्था में) क्रीड़ाकर और विचार कर भले-बुरे को देखता हुआ ही (गहरी नींद में जाता है) (पुनः+प्रतिन्यायम्+प्रतियोनि+बुद्धान्तायैव+आद्रवति) फिर लौटने के लिए जिस जाग्रत स्थान से गया था उसी जाग्रत के लिए ही लौटता है। वहाँ वह जो कुछ देखता है उससे लिप्त नहीं होता, क्योंकि यह जीव असंग है। जनक-याज्ञवल्क्य! यह ऐसे ही है। सो मैं भगवान को १००० (गाएँ) देता हूँ। इससे आगे बन्धन से छूटने के लिए उपदेश देवें।

स वा एष एतस्मिन्बुद्धान्ते रत्वा चरित्वा दृष्ट्वैव पुण्यं च पापं च पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्याद्रवति स्वप्नान्तायैव॥ बृहदारण्यकोपनिषद ४.३.१७

पदार्थः (याज्ञ०-सः वै एषः अस्मिन्) निश्चय वह (जीव) इस जागरण में (बुद्धान्ते रत्वा चरित्वा) रमण और भ्रमण करके (पुण्यं च पापं च दृष्ट्वा एव) पुण्य और पाप को देखकर ही (पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोनि) फिर प्रत्यागमन से स्थान के (स्वप्नान्ताय एव आद्रवति) प्रति स्वप्न को ही दौड़ता है।

ता वा अस्यैता हिता नाम नाड्यो यथा केशः सहस्रधा भिन्नस्तावताणिम्ना तिष्ठन्ति शुक्लस्य नीलस्य पिङ्गलस्य हरितस्य लोहितस्य पूर्णा अथ यत्रैनं घ्नन्तीव जिनन्तीव हस्तीव विच्छाययति गर्तमिवपतति यदेव जाग्रद्भयं पश्यति तदत्राविद्यया मन्यतेऽथ यत्र देव इव राजेवाहमेवेदं सर्वोऽस्मीति मन्यते सोऽस्य परमो लोकः॥ बृहदारण्यकोपनिषद ४.३.२०

पदार्थः (याज्ञ०-अस्य ताः वै एताः) निश्चय इस (स्वप्नद्रष्टा की वे) (नाड्यः हिताः नाम) जो हिता नाम की नाड़ियाँ हैं, (वे) (तावता अणिम्ना तिष्ठन्ति) इतनी सूक्ष्मता से शरीर में स्थित हैं (यथा केशः सहस्रधा भिन्नः) जितना बाल का हजारवां भाग। (शुक्लस्य नीलस्य पिंगलस्य) श्वेत, नीले, पीले (हरितस्य लोहितस्य पूर्णाः) हरे और लाल रंग के रस से भरी (वे नाड़ियाँ हैं) (अथ यत्र एनम्) अब जब (स्वप्नावस्था में) इस (स्वप्नद्रष्टा जीव) को (घ्नन्ति इव) मानो कोई मार रहे हैं, (जिनन्ति इव) कोई मानो वश में कर रहे हैं, (हस्ति इव विच्छाययति) मानो हाथी पीछा कर रहा है, (गर्त्तम् इव पतति) मानो (वह) गड्ढे में गिर रहा है, (जाग्रद् यद् एव) जागता हुआ (वह जीव) जो भी (भयं पश्यति यत्र तत्) भय देखता है, उसे वहाँ (अविद्यया मन्यते) अज्ञान से (ठीक) मान लेता है। (अथ यत्र देवः इव) और जब (यह जीव) देवता की भांति, (राजा इव अहम् एव इदम्) राजा की भांति मैं ही यह (सर्वम् अस्मि इति मन्यते) सब कुछ हूँ, ऐसा मानता है (सः अस्य परमः लोकः) वह इस का परम

आनन्द है (सब से ऊंची दुनियाँ है।)।

श्रृङ्गी मुनि कृष्णदत्त जी महाराज

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

सुषुप्ति अवस्था

सुषुप्ति किसे कहते है? मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार यह चतुष अन्तःकरण कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, यह मानव, जब सुषुप्ति में चला जाता है, तो मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार अपनी साम्यावस्था में परणित हो जाते है और यह विश्राम करने लगता है। मेरे प्यारे! देखो, आत्मं ब्रह्मे यह आत्मा प्राण के साथ में मानो एक मन, एक सूत्र बना करके बेटा! आत्मा गति करता रहता है। मानो देखो, कौन जागता रहता है, याजागां ब्रह्मे आत्मा मेरे प्यारे! आत्मा जागरूक रहता है। यह प्राण के सूत्र में पिरोया हुआ है। तो विचार विनिमय क्या, वेद का ऋषि कहता है हे राजन्! जब यह मानव मानो विश्राम यह मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार मानो देखो, चतुष अन्तःकरण बन जाता है, अन्तःकरण वह कहलाता है जहाँ नाना वासनाएं, नाना नाना अङ्कुर रूपों से बेटा! विद्यमान रहती है। जैसे मन, बुद्धि चित्त यह जो चित्त है, इसमें नाना जन्मों के संस्कार विद्यमान होते है।

बेटा! मुझे स्मरण है ऋषि ने एक समय वर्णन कराया कि हमारे अङ्गिरस गोत्र में एक श्वेत्ताम अङ्गिरस मुनि हुए है। परन्तु वह अङ्गिरस मुनि महाराज भयंकर वनों में मानो पीपल और बड़ के पाश्चाङ्ग को पान करता हुआ, अपने चित्त के संस्कारों का उद्बुद्ध करना चाहता था। और वह उद्बुद्ध करने के लिए तत्पर हो रहा था। परन्तु देखो, ऐसे ऋषि हुए है, जिन्होंने चित्त के मण्डल में अपने नाना जन्मों के संस्कारों को उन्होंने साक्षात्कार किया है।

सुषुप्ति अवस्था

यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम् । सुषुप्तस्थान

एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक्चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः ॥ माण्डुक्योपनिषद १.५

पदार्थः (यत्र) जिस अवस्था में (सुप्तः) सोया हुआ (न) नहीं (कंचन कामं) किसी काम को (कामयते) इच्छा करता (न) नहीं (कंचन) कोई (स्वप्नं) स्वप्न को (पश्यति) देखता है (तत्) वह (सुषुप्तम्) सुषुप्ति की अवस्था है (सुषुप्तस्थाने) उस स्थान पर (एकीभूतः) समस्त ज्ञान से एकत्रित होकर (प्रज्ञानघनः) अंधेरी रात्रि की भांति विवेकरहित ज्ञानवाला (एव) है (आनन्दमयः) आनन्दयुक्त (आनन्दभुक्) आनन्द को भोगता है (चेतोमुखः) केवल स्वाभाविक ज्ञान ही जिसका मुख है (प्राज्ञः) प्राज्ञ नाम वाला (तृतीयःपादः) यह तीसरा पाद है।

सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपीतेर्वा मिनोति ह वा इदं सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद ॥ माण्डुक्योपनिषद १.११

पदार्थः (सुषुप्तस्थानः) सुषुप्त स्थान (प्राज्ञः) प्राज्ञनाम वाला (मकारस्तृतीया मात्रा) मकार तृतीया मात्रा है (मितेः) अनुमान करने से (अपीतेर्वा) एक ही हो जाने से (मिनोति) अनुमान करता है (ह वा) यथावत् (इदं सर्वम्) इस सब जगत् को (अपीतिश्च भवति) यह जगत् का जो कारण है इसको प्राप्त होता है (यः) जो (एवं) इस प्रकार (वेद) जानता है।

स यदा तेजसाभिभूतो भवति । अत्रैष देवः स्वप्नान्न पश्यत्यथैतदस्मिञ्शरीरे एतत्सुखं भवति ॥ प्रश्नोपनिषद ४.६

पदार्थः (सः) वह। (यदा) जब या जिस दशा में। (तेजसा) प्रकाश से। (अभिभूतः) दिया हुआ। (भवति) होता है। (अत्र) इस दशा में। (एष देवः) यह जीवात्मा। (स्वप्नान्) स्वप्न को। (न) नहीं। (पश्यति) देखता है। (अथ) परमात्मा के प्रकाश से दब जाने के पश्चात्। (तत्) वह जीवात्मा। (अस्मिन् शरीरे) इस शरीर। (एतत्) यह सुषुप्ति अवस्था। (सुखम्) सुख। (भवति) होता है।

तद्यथास्मिन्नाकाशे श्येनो वा सुपर्णो वा विपरिपत्य श्रान्तः संहत्य पक्षौ संलयायैव

ध्रियत एवमेवायं पुरुष एतस्मा अन्ताय धावति यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति॥ बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.१९

पदार्थः (याज्ञ०-तद् यथा अस्मिन् आकाशे) सो जैसे इस आकाश में (श्येनः वा सुपर्णः वा विपरिपत्य) बाज या गरुड़ इधर-उधर उड़ कर (श्रान्तः पक्षौ संहत्य) थकने से दोनों पंखों को लपेट (संल्लयाय एव ध्रियते) घोंसले की ओर मुड़ता है (एवम् एव अयं पुरुषः) इसी प्रकार यह पुरुष (जीव) (एतस्मै अन्ताय धावति) (सुषुप्ति) अवस्था को दौड़ता है (यत्र सुप्तः) जहाँ सोकर (कंचन कामं न कामयते) किसी विषय की इच्छा नहीं करता, (कंचन स्वप्नं न पश्यति) न कोई स्वप्न देखता है।

तद्वा अस्यैतदतिच्छन्दा अपहतपाप्माभयं रूपम् । तद्यथा प्रियया स्त्रिया सम्परिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेद नान्तरमेवमेवायं पुरुषः प्राज्ञेनात्मना सम्परिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेद नान्तरं तद्वा अस्यैतदाप्तकाममात्मकाममकामं रूपं शोकान्तरम्॥ बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.२१

पदार्थः (याज्ञ०-वै अस्य तत्) निश्चय इस (सुषुप्त पुरुष) का (एतत् रूपम् अतिच्छन्दाः) वह यह रूप् काम रहित, (अपहत पाप्मा अभयं) पाप रहित और भय-शून्य है। (तद् यथा प्रियया स्त्रिया) सो जैसे प्रिय पत्नी से आलिंगित (सम्परिष्वक्तः) (गले लगा हुआ पुरुष) (बाह्यं किंचन न वेद) बाहर का कुछ नहीं जानता (न आन्तरं) न भीतर का (कुछ जानता है) (एवम् एव अयं पुरुषः) इसी प्रकार यह (सुषुप्त) जीव (आत्मना प्राज्ञेन) प्राज्ञ (ज्ञानी) आत्मा के गले लग (सम्परिष्वक्तः) (सुषुप्ति के आनन्द में मग्न हो) (न बाह्यं किंचन वेद) न बाहर की खबर रखता है, (न आन्तरं) न भीतर की। (वै अस्य तत् एतत् रूपं) निश्चय इसका वह यह रूप (आप्तकामं आत्मकामं) पूर्ण काम, ब्रह्म की कामना वाला (अकाम) निष्काम-आसक्ति शून्य और (शोकान्तरं) शोकभिन्न (शोक रहित) होता है।

अत्र पितापिता भवति मातामाता लोका अलोका देवा अदेवा वेदा अवेदाः । अत्र स्तेनोऽस्तेनो भवति भ्रूणहाभ्रूणहा चाण्डालोऽचाण्डालः पौल्कसोऽपौल्कसः श्रमणोऽश्रमणस्तापसोऽतापसोऽनन्वागतं पुण्येनानन्वागतं पापेन तीर्णो हि तदा सर्वाञ्छोकान्हृदयस्य भवति॥ बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.२२

पदार्थः (याज्ञ०-अत्र पिता अपिता) यहाँ पिता में पिता भाव (और) (माता अमाता भवति) माता में मातृभाव नहीं रहता। (लोकाः अलोकाः देवाः अदेवाः) लोक अलोक, देव देवभाव शून्य (वेदाः अवेदाः) वेद अवेद हो जाते हैं (सुषुप्ति में इनका कुछ बोध नहीं रहता) (अत्र स्तेनः अस्तेनः भवति) (सुषुप्ति) दशा में चोर भूल जाता है मैं चोर हूँ, (भ्रूणहा अभ्रूणहा चाण्डालः) बालघाती बालघाती (अचाण्डालः।) व चाण्डाल चाण्डाल नहीं रहता (पौल्कसः अपौल्कसः) पौल्कस-क्षत्रिया माता से शूद्र पिता का पुत्र यह भूल जाता है। (श्रमणः अश्रमणः) सन्यासी असन्यासी और (तापसः अतापसः) तपस्वी अतपस्वी (हो जाता है) (पुण्येन अनन्वागतम्) पुण्य से असम्बद्ध (रहता है) (हि यदा हृदयस्य सर्वान्) क्योंकि सुषुप्त जन हृदय के सब (शोकान् तीर्णः भवति) शोकों को तैरा हुआ होता है।

यद्वै तन्न पश्यति पश्यन्वै तन्न पश्यति न हि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात् । न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यत्पश्येत्॥ बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.२३

पदार्थः (याज्ञ०-यत् वै तत् न पश्यति) निश्चय जो वह (सुषुप्त पुरुष) नहीं देखता (ऐसा नहीं कि वह न देख सकता हो, किन्तु) (वै पश्यन् तत् न पश्यति) देखता हुआ भी वह नहीं देखता (कि द्रष्टुः दृष्टे विपरिलोपः न विद्यते) क्योंकि द्रष्टा (जीव) की दृष्टि-दर्शन-शक्ति का नाश नहीं होता (अविनाशित्वात्) (जीव के) अविनाशी होने से। (तु तत् ततः अन्यद्) परन्तु उस (सुषुप्ति) में अन्य (विभक्तं द्वितीयम्) (सुषुप्त पुरुष से) भिन्न दूसरी (न अस्ति यत् पश्येत्) (वस्तु) नहीं होती, जिसे देखे।

यद्वै तन्न जिघ्रति जिघ्रन्वै तन्न जिघ्रति न हि घ्रातुर्घ्रातेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यज्जिघ्रेत्॥ बृहदारण्यकोपनिषद ४.३.२४

पदार्थः (याज्ञ०-वै तत् यत् न जिघ्रति) निश्चय वह जो नहीं सूंघता (ऐसा नहीं, वह नहीं सूंघ सकता किन्तु) (वै जिघ्रत् तत् न जिघ्रति) सूंघता हुआ भी वह नहीं सूंघता (हि घ्रातुः घ्रातेः) क्योंकि सूंघने वाले (सुषुप्त) की (विपरिलोपः न विद्यते) घ्राण शक्ति का लोप नहीं होता (अविनाशित्वात्) अविनाशी होने से। (तु तत् न द्वितीयम्) किन्तु सुषुप्ति में दूसरी वस्तु (ततः अन्यत् विभक्तम्) उस (सुषुप्त) से पृथक् कुछ नहीं, (यत् जिघ्रेत्) जिसे सूंघे।

यद्वै तन्न रसयते रसयन्वै तन्न रसयते न हि रसयितू रसयतेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यद्रसयेत्॥ बृहदारण्यकोपनिषद ४.३.२५

पदार्थः याज्ञवल्क्य-निश्चय वह जो नहीं (रसयते) चखता (ऐसा नहीं कि वह चख न सकता हो) चखता हुआ भी वह नहीं चखता क्योंकि चखने वाले (सुषुप्त पुरुष) की (रसयते) रसना शक्ति का नाश नहीं होता-अविनाशी होने से। परन्तु उस (सुषुप्ति) में दूसरी वस्तु उससे भिन्न नहीं, जिसे वह चखे।

यद्वै तन्न वदति वदन्वै तन्न वदति न हि वक्तुर्वक्तेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यद्वदेत्॥ बृहदारण्यकोपनिषद ४.३.२६

पदार्थः याज्ञवल्क्य-निश्चय वह जो नहीं (वदति) बोलता (ऐसा नहीं कि बोल न सकता हो किन्तु बोलता हुआ भी वह नहीं बोलता क्योंकि) (वक्तुः) बोलने वाले (सुषुप्तपुरुष) की (वक्तेः) वक्तृत्वशक्ति का नाश नहीं होता, अविनाशी होने से। परन्तु उस (सुषुप्ति) में दूसरी वस्तु उससे भिन्न नहीं, जिसे वह बोले।

यद्वै तन्न शृणोति शृण्वन्वै तन्न शृणोति न हि श्रोतुः श्रुतेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यच्छृणुयात्॥

बृहदारण्यकोपनिषद ४.३.२७

पदार्थः याज्ञवल्क्य-निश्चय वह जो नहीं (शृणोति) सुना (ऐसा नहीं कि सुन न सकता हो किन्तु) (शृण्वन् + वै + न शृणोति) सुनता हुआ भी वह नहीं सुनता क्योंकि (श्रोतुः + श्रुतेः) सुनने वाले की (सुषुप्तपुरुष) श्रवण शक्ति का नाश नहीं होता, अविनाशी होने से। परन्तु उस (सुषुप्त) में दूसरी वस्तु उससे भिन्न नहीं (होती) जिसे वह सुने।

यद्वै तन्न मनुते मन्वानो वै तन्न मनुते न हि मन्तुर्मतेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यन्मन्वीत॥

बृहदारण्यकोपनिषद ४.३.२८

पदार्थः निश्चय वह जो नहीं (मनुते) मनन करता (ऐसा नहीं कि मनन न कर सकता हो किन्तु) (मन्वानः) मनन करते हुए भी वह मनन नहीं करता क्योंकि (मन्तुर्मतेः) मनन करने वाले की मनन शक्ति का नाश नहीं होता, अविनाशी होने से। परन्तु (सुषुप्ति) में दूसरी वस्तु उससे भिन्न नहीं होती (यत् + मन्वीत) जिसका वह मनन करे।

यद्वै तन्न स्पृशति स्पृशन्वै तन्न स्पृशति न हि स्प्रष्टुः स्पृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यत्स्पृशेत्॥

बृहदारण्यकोपनिषद ४.३.२९

पदार्थः निश्चय वह जो नहीं (स्पृशति) स्पर्श करता (ऐसा नहीं कि स्पर्श न कर सकता हो किन्तु) (स्पृशन्) स्पर्श करते हुए भी वह स्पर्श नहीं करता क्योंकि (स्प्रष्टुः + स्पृष्टेः) स्पर्श करने वाले की स्पर्श-शक्ति का लोप नहीं होता अविनाशी होने से। परन्तु उस (सुषुप्ति) में दूसरी वस्तु उससे भिन्न नहीं होती (यत् + स्पृशेत) जिसे वह स्पर्श करे।

यद्वै तन्न विजानाति विजानन्वै तन्न विजानाति न हि विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यद्विजानीयात्॥

बृहदारण्यकोपनिषद ४.३.३०

पदार्थः याज्ञवल्क्य-निश्चय वह जो नहीं जानता (ऐसा नहीं कि न जान सकता हो किन्तु) जानते हुए भी वह नहीं जानता (हि + विज्ञातुः + विज्ञातेः) क्योंकि विज्ञाता की जानने की शक्ति का नाश नहीं होता, अविनाशी होने से। परन्तु उस (सुषुप्ति) में दूसरी वस्तु उससे भिन्न नहीं होती जिसे वह जाने।

टिप्पणीः कण्डिका तक की व्याख्या सुषुप्ति अवस्था का वर्णन जारी रखते हुए इन कण्डिकाओं में देखने, सूंघने, चखने, सुनने, मनन करने, स्पर्श करने और जानने के समस्त कारण का जो बाह्म ज्ञानप्राप्ति के साधन हैं सुषुप्तावस्था में निरर्थक होना दिखलाया गया है। कारण यह है कि सुषुप्ति में मन और इन्द्रियों का समस्त काम बन्द रहता है केवल सुषुप्त पुरुष काम करता है, उस का सम्बन्ध बाह्य जगत् से इन्हीं इन्द्रियों के द्वारा हुआ करता है। और अब इन्द्रियों के काम बन्द होते हैं, इसलिए उसका बाह्य जगत् से सम्बन्ध टूटा हुआ रहता है। सम्बन्ध टूटने से उसके सिवा कोई वस्तु बाह्य जगत् की उसके सम्मुख नहीं रहती, जिसे वह देखे, सुने इत्यादि। सुषुप्त पुरुष में देखने सुनने आदि की शक्तियाँ अवश्य मौजूद रहती हैं परन्तु वह क्षेत्र बाकी नहीं रहता जहाँ वह शक्तियाँ काम किया करती हैं।

आत्मा की चार अवस्था_जाग्रत_स्वप्न_सुषुप्ति_तुरीय

श्रृङ्गी मुनि कृष्णदत्त जी महाराज

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

सुषुप्ति अवस्था

सुषुप्ति किसे कहते है? मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार यह चतुष अन्तःकरण कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, यह मानव, जब सुषुप्ति में चला जाता है, तो मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार अपनी साम्यावस्था में परणित हो जाते है और यह विश्राम करने लगता है। मेरे प्यारे! देखो, आत्मं ब्रह्मे यह आत्मा प्राण के साथ में मानो एक मन, एक सूत्र बना करके बेटा! आत्मा गति करता रहता है। मानो देखो, कौन जागता रहता है, याजागां ब्रह्मे आत्मा मेरे प्यारे! आत्मा जागरूक रहता है। यह प्राण के सूत्र में पिरोया हुआ है। तो विचार विनिमय क्या, वेद का ऋषि कहता है हे राजन्! जब यह मानव मानो विश्राम यह मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार मानो देखो, चतुष अन्तःकरण बन जाता है, अन्तःकरण वह कहलाता है जहाँ नाना वासनाएं, नाना नाना अङ्कुर रूपों से बेटा! विद्यमान रहती है। जैसे मन, बुद्धि चित्त यह जो चित्त है, इसमें नाना जन्मों के संस्कार विद्यमान होते है।

बेटा! मुझे स्मरण है ऋषि ने एक समय वर्णन कराया कि हमारे अङ्गिरस गोत्र में एक श्वेत्ताम अङ्गिरस मुनि हुए है। परन्तु वह अङ्गिरस मुनि महाराज भयंकर वनों में मानो पीपल और बड़ के पाश्चाङ्ग को पान करता हुआ, अपने चित्त के संस्कारों का उद्बुद्ध करना चाहता था। और वह उद्बुद्ध करने के लिए तत्पर हो रहा था। परन्तु देखो, ऐसे ऋषि हुए है, जिन्होंने चित्त के मण्डल में अपने नाना जन्मों के संस्कारों को उन्होंने साक्षात्कार किया है।

सुषुप्ति अवस्था

यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम् । सुषुप्तस्थान

एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक्चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः ॥ माण्डुक्योपनिषद १.५
पदार्थः (यत्र) जिस अवस्था में (सुप्तः) सोया हुआ (न) नहीं (कंचन कामं) किसी काम को (कामयते) इच्छा करता (न) नहीं (कंचन) कोई (स्वप्नं) स्वप्न को (पश्यति) देखता है (तत्) वह (सुषुप्तम्) सुषुप्ति की अवस्था है (सुषुप्तस्थाने) उस स्थान पर (एकीभूतः) समस्त ज्ञान से एकत्रित होकर (प्रज्ञानघनः) अंधेरी रात्रि की भांति विवेकरहित ज्ञानवाला (एव) है (आनन्दमयः) आनन्दयुक्त (आनन्दभुक्) आनन्द को भोगता है (चेतोमुखः) केवल स्वाभाविक ज्ञान ही जिसका मुख है (प्राज्ञः) प्राज्ञ नाम वाला (तृतीयःपादः) यह तीसरा पाद है।
सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपीतेर्वा मिनोति ह वा इदं सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद ॥ माण्डुक्योपनिषद १.११
पदार्थः (सुषुप्तस्थानः) सुषुप्त स्थान (प्राज्ञः) प्राज्ञनाम वाला (मकारस्तृतीया मात्रा) मकार तृतीया मात्रा है (मितेः) अनुमान करने से (अपीतेर्वा) एक ही हो जाने से (मिनोति) अनुमान करता है (ह वा) यथावत् (इदं सर्वम्) इस सब जगत् को (अपीतिश्च भवति) यह जगत् का जो कारण है इसको प्राप्त होता है (यः) जो (एवं) इस प्रकार (वेद) जानता है।
स यदा तेजसाभिभूतो भवति । अत्रैष देवः स्वप्नान्न पश्यत्यथैतदस्मिञ्शरीरे एतत्सुखं भवति ॥ प्रश्नोपनिषद ४.६
पदार्थः (सः) वह। (यदा) जब या जिस दशा में। (तेजसा) प्रकाश से। (अभिभूतः) दिया हुआ। (भवति) होता है। (अत्र) इस दशा में। (एष देवः) यह जीवात्मा। (स्वप्नान्) स्वप्न को। (न) नहीं। (पश्यति) देखता है। (अथ) परमात्मा के प्रकाश से दब जाने के पश्चात्। (तत्) वह जीवात्मा। (अस्मिन् शरीरे) इस शरीर। (एतत्) यह सुषुप्ति अवस्था। (सुखम्) सुख। (भवति) होता है।
तद्यथास्मिन्नाकाशे श्येनो वा सुपर्णो वा विपरिपत्य श्रान्तः संहत्य पक्षौ संलयायैव

ध्रियत एवमेवायं पुरुष एतस्मा अन्ताय धावति यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति॥ बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.१९

पदार्थः (याज्ञ०-तद् यथा अस्मिन् आकाशे) सो जैसे इस आकाश में (श्येनः वा सुपर्णः वा विपरिपत्य) बाज या गरुड़ इधर-उधर उड़ कर (श्रान्तः पक्षौ संहत्य) थकने से दोनों पंखों को लपेट (संल्लयाय एव ध्रियते) घोंसले की ओर मुड़ता है (एवम् एव अयं पुरुषः) इसी प्रकार यह पुरुष (जीव) (एतस्मै अन्ताय धावति) (सुषुप्ति) अवस्था को दौड़ता है (यत्र सुप्तः) जहाँ सोकर (कंचन कामं न कामयते) किसी विषय की इच्छा नहीं करता, (कंचन स्वप्नं न पश्यति) न कोई स्वप्न देखता है।

तद्वा अस्यैतदतिच्छन्दा अपहतपाप्माभयं रूपम् । तद्यथा प्रियया स्त्रिया सम्परिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेद नान्तरमेवमेवायं पुरुषः प्राज्ञेनात्मना सम्परिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेद नान्तरं तद्वा अस्यैतदाप्तकाममात्मकाममकामं रूपं शोकान्तरम्॥ बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.२१

पदार्थः (याज्ञ०-वै अस्य तत्) निश्चय इस (सुषुप्त पुरुष) का (एतत् रूपम् अतिच्छन्दाः) वह यह रूप् काम रहित, (अपहत पाप्मा अभयं) पाप रहित और भय-शून्य है। (तद् यथा प्रियया स्त्रिया) सो जैसे प्रिय पत्नी से आलिंगित (सम्परिष्वक्तः) (गले लगा हुआ पुरुष) (बाह्यं किंचन न वेद) बाहर का कुछ नहीं जानता (न आन्तरं) न भीतर का (कुछ जानता है) (एवम् एव अयं पुरुषः) इसी प्रकार यह (सुषुप्त) जीव (आत्मना प्राज्ञेन) प्राज्ञ (ज्ञानी) आत्मा के गले लग (सम्परिष्वक्तः) (सुषुप्ति के आनन्द में मग्न हो) (न बाह्यं किंचन वेद) न बाहर की खबर रखता है, (न आन्तरं) न भीतर की। (वै अस्य तत् एतत् रूपं) निश्चय इसका वह यह रूप (आप्तकामं आत्मकामं) पूर्ण काम, ब्रह्म की कामना वाला (अकाम) निष्काम-आसक्ति शून्य और (शोकान्तरं) शोकभिन्न (शोक रहित) होता है।

अत्र पितापिता भवति मातामाता लोका अलोका देवा अदेवा वेदा अवेदाः । अत्र स्तेनोऽस्तेनो भवति भ्रूणहाभ्रूणहा चाण्डालोऽचाण्डालः पौल्कसोऽपौल्कसः श्रमणोऽश्रमणस्तापसोऽतापसोऽनन्वागतं पुण्येनानन्वागतं पापेन तीर्णो हि तदा सर्वाञ्छोकान्हृदयस्य भवति॥ बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.२२

पदार्थः (याज्ञ०-अत्र पिता अपिता) यहाँ पिता में पिता भाव (और) (माता अमाता भवति) माता में मातृभाव नहीं रहता। (लोकाः अलोकाः देवाः अदेवाः) लोक अलोक, देव देवभाव शून्य (वेदाः अवेदाः) वेद अवेद हो जाते हैं (सुषुप्ति में इनका कुछ बोध नहीं रहता) (अत्र स्तेनः अस्तेनः भवति) (सुषुप्ति) दशा में चोर भूल जाता है मैं चोर हूँ, (भ्रूणहा अभ्रूणहा चाण्डालः) बालघाती बालघाती (अचाण्डालः।) व चाण्डाल चाण्डाल नहीं रहता (पौल्कसः अपौल्कसः) पौल्कस-क्षत्रिया माता से शूद्र पिता का पुत्र यह भूल जाता है। (श्रमणः अश्रमणः) सन्यासी असन्यासी और (तापसः अतापसः) तपस्वी अतपस्वी (हो जाता है) (पुण्येन अनन्वागतम्) पुण्य से असम्बद्ध (रहता है) (हि यदा हृदयस्य सर्वान्) क्योंकि सुषुप्त जन हृदय के सब (शोकान् तीर्णः भवति) शोकों को तैरा हुआ होता है।

यद्वै तन्न पश्यति पश्यन्वै तन्न पश्यति न हि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात् । न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यत्पश्येत्॥ बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.२३

पदार्थः (याज्ञ०-यत् वै तत् न पश्यति) निश्चय जो वह (सुषुप्त पुरुष) नहीं देखता (ऐसा नहीं कि वह न देख सकता हो, किन्तु) (वै पश्यन् तत् न पश्यति) देखता हुआ भी वह नहीं देखता (कि द्रष्टुः दृष्टे विपरिलोपः न विद्यते) क्योंकि द्रष्टा (जीव) की दृष्टि-दर्शन-शक्ति का नाश नहीं होता (अविनाशित्वात्) (जीव के) अविनाशी होने से। (तु तत् ततः अन्यद्) परन्तु उस (सुषुप्ति) में अन्य (विभक्तं द्वितीयम्) (सुषुप्त पुरुष से) भिन्न दूसरी (न अस्ति यत् पश्येत्) (वस्तु) नहीं होती, जिसे देखे।

यद्वै तन्न जिघ्रति जिघ्रन्वै तन्न जिघ्रति न हि घ्रातुर्घ्रातेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यज्जिघ्रेत्॥ बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.२४

पदार्थः (याज्ञ०-वै तत् यत् न जिघ्रति) निश्चय वह जो नहीं सूंघता (ऐसा नहीं, वह नहीं सूंघ सकता किन्तु) (वै जिघ्रत् तत् न जिघ्रति) सूंघता हुआ भी वह नहीं सूंघता (हि घ्रातुः घ्रातेः) क्योंकि सूंघने वाले (सुषुप्त) की (विपरिलोपः न विद्यते) घ्राण शक्ति का लोप नहीं होता (अविनाशित्वात्) अविनाशी होने से। (तु तत् न द्वितीयम्) किन्तु सुषुप्ति में दूसरी वस्तु (ततः अन्यत् विभक्तम्) उस (सुषुप्त) से पृथक् कुछ नहीं, (यत् जिघ्रेत्) जिसे सूंघे।

यद्वै तन्न रसयते रसयन्वै तन्न रसयते न हि रसयितू रसयतेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यद्रसयेत्॥ बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.२५

पदार्थः याज्ञवल्क्य-निश्चय वह जो नहीं (रसयते) चखता (ऐसा नहीं कि वह चख न सकता हो) चखता हुआ भी वह नहीं चखता क्योंकि चखने वाले (सुषुप्त पुरुष) की (रसयते) रसना शक्ति का नाश नहीं होता-अविनाशी होने से। परन्तु उस (सुषुप्ति) में दूसरी वस्तु उससे भिन्न नहीं, जिसे वह चखे।

यद्वै तन्न वदति वदन्वै तन्न वदति न हि वक्तुर्वक्तेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यद्वदेत्॥ बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.२६

पदार्थः याज्ञवल्क्य-निश्चय वह जो नहीं (वदति) बोलता (ऐसा नहीं कि बोल न सकता हो किन्तु बोलता हुआ भी वह नहीं बोलता क्योंकि) (वक्तुः) बोलने वाले (सुषुप्तपुरुष) की (वक्तेः) वक्तृत्वशक्ति का नाश नहीं होता, अविनाशी होने से। परन्तु उस (सुषुप्ति) में दूसरी वस्तु उससे भिन्न नहीं, जिसे वह बोले।

यद्वै तन्न शृणोति शृण्वन्वै तन्न शृणोति न हि श्रोतुः श्रुतेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यच्छृणुयात्॥

बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.२७

पदार्थः याज्ञवल्क्य-निश्चय वह जो नहीं (श्रणोति) सुना (ऐसा नहीं कि सुन न सकता हो किन्तु) (श्रण्वन् + वै + न श्रणोति) सुनता हुआ भी वह नहीं सुनता क्योंकि (श्रोतुः + श्रुतेः) सुनने वाले की (सुषुप्तपुरुष) श्रवण शक्ति का नाश नहीं होता, अविनाशी होने से। परन्तु उस (सुषुप्त) में दूसरी वस्तु उससे भिन्न नहीं (होती) जिसे वह सुने।

यद्वै तन्न मनुते मन्वानो वै तन्न मनुते न हि मन्तुर्मतेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यन्मन्वीत॥

बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.२८

पदार्थः निश्चय वह जो नहीं (मनुते) मनन करता (ऐसा नहीं कि मनन न कर सकता हो किन्तु) (मन्वानः) मनन करते हुए भी वह मनन नहीं करता क्योंकि (मन्तुर्मतेः) मनन करने वाले की मनन शक्ति का नाश नहीं होता, अविनाशी होने से। परन्तु (सुषुप्ति) में दूसरी वस्तु उससे भिन्न नहीं होती (यत् + मन्वीत) जिसका वह मनन करे।

यद्वै तन्न स्पृशति स्पृशन्वै तन्न स्पृशति न हि स्प्रष्टुः स्पृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यत्स्पृशेत्॥

बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.२९

पदार्थः निश्चय वह जो नहीं (स्पृशति) स्पर्श करता (ऐसा नहीं कि स्पर्श न कर सकता हो किन्तु) (स्पृशन्) स्पर्श करते हुए भी वह स्पर्श नहीं करता क्योंकि (स्प्रष्टुः + स्पृष्टेः) स्पर्श करने वाले की स्पर्श-शक्ति का लोप नहीं होता अविनाशी होने से। परन्तु उस (सुषुप्ति) में दूसरी वस्तु उससे भिन्न नहीं होती (यत् + स्पृशेत) जिसे वह स्पर्श करे।

यद्वै तन्न विजानाति विजानन्वै तन्न विजानाति न हि विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यद्विजानीयात्॥

बृहदारण्यकोपनिषद ४.३.३०

पदार्थः याज्ञवल्क्य-निश्चय वह जो नहीं जानता (ऐसा नहीं कि न जान सकता हो किन्तु) जानते हुए भी वह नहीं जानता (हि + विज्ञातुः + विज्ञातेः) क्योंकि विज्ञाता की जानने की शक्ति का नाश नहीं होता, अविनाशी होने से। परन्तु उस (सुषुप्ति) में दूसरी वस्तु उससे भिन्न नहीं होती जिसे वह जाने।

टिप्पणीः कण्डिका तक की व्याख्या सुषुप्ति अवस्था का वर्णन जारी रखते हुए इन कण्डिकाओं में देखने, सूंघने, चखने, सुनने, मनन करने, स्पर्श करने और जानने के समस्त कारण का जो बाह्य ज्ञानप्राप्ति के साधन हैं सुषुप्तावस्था में निरर्थक होना दिखलाया गया है। कारण यह है कि सुषुप्ति में मन और इन्द्रियों का समस्त काम बन्द रहता है केवल सुषुप्त पुरुष काम करता है, उस का सम्बन्ध बाह्य जगत् से इन्हीं इन्द्रियों के द्वारा हुआ करता है। और अब इन्द्रियों के काम बन्द होते हैं, इसलिए उसका बाह्य जगत् से सम्बन्ध टूटा हुआ रहता है। सम्बन्ध टूटने से उसके सिवा कोई वस्तु बाह्य जगत् की उसके सम्मुख नहीं रहती, जिसे वह देखे, सुने इत्यादि। सुषुप्त पुरुष में देखने सुनने आदि की शक्तियाँ अवश्य मौजूद रहती हैं परन्तु वह क्षेत्र बाकी नहीं रहता जहाँ वह शक्तियाँ काम किया करती हैं।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

ओ३म् की तीन मात्राएं

सबसे प्रथम अ शब्द है उसके पश्चात उ और म्। ये तीन शब्द कहलाते हैं, जो ओ३म् की आकृति बन करके, ये तीन शब्दों में, ये तीन मात्राओं में सर्वत्र विद्या के, सब शब्दों में समाहित हो रहे हैं। तीन ही प्रकार के गुण है। जिन्हें देवत्व के रूप में भी वर्णित किया गया है। सबसे प्रथम पालना और पालना के पश्चात अनुशासन और उत्पति के मूल में जिन्हें सतोगुण, रजोगुण, ओर तमोगुण कहते हैं। ये तीन प्रकार के गुण कहलाते हैं सबसे प्रथम उसमें भी पालना का प्रसंग आता है। पालना में विष्णु कहलाता है और रजोगुण में वह शिव कहलाता है, तमोगुण में ब्रह्म कहलाता है, तो उत्पति के मूल में ब्रह्म है और अनुशासन के रूप में शिव कहलाता है और पालना के गर्भ में विष्णु कहलाता है, विष्णु नाम परमपिता परमात्मा का है जो हमारा कल्याण करने वाला है, वह कल्याण में ही निहित रहने वाला है। इसीलिए उसे विष्णु कहते हैं इसी प्रकार भूः पृथ्वी है भुवः आपो है और जिसे हम स्वः कहते हैं उसमें हम रत्त रहते है।

यह ऋषियों की बड़ी एक महान उपलब्धि रही है, जिसके ऊपर हमें विचारना है, अन्वेषण करना है जैसे, एक मानव वेद मन्त्रों का उदगीत गा रहा है। प्रारम्भ में वह ओ३म् उच्चारण कर रहा है अ, उ और म् ये तीन अक्षर कहलाते हैं तीनों धाराएं जब वह उनका उदगीत गाता है तो उसके पश्चात वह मन्त्र की मन्त्रणा करता है। वह वेदमन्त्रों का उदगीत गाता है और उदगीत गाता हुआ वह ओ३म् में पिरोया हुआ है। जैसे नाना प्रकार के मनके होते हैं और वे मनके एक सूत्र में पिरोये जाते हैं तो वह माला बन जाती है। इसी प्रकार यह जो ब्रह्माण्ड है यह माला के सदृश्य है। इसी प्रकार ये जो वेदमन्त्र है ये भी

माला के सदृश्य हैं। ओ३म् रूपी सूत्र में ओ३म् रूपी धागें में यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड का, एक-एक वेदमन्त्र वेदों का पिरोया हुआ है और उसकी माला बन जाती है। इसी प्रकार, वही कहीं ज्ञान काण्ड रूपी माला है कहीं कर्म काण्ड रूपी माला है कही उपासना काण्ड रूपी माला है तो यह यह त्रिवर्धा बन जाती है, यह त्रि विद्या कहलाती है। ज्ञान कर्म और उपासना इसकी माला बन करके वह ओ३म् रूपी सूत्र में पिरोयी जाती है इसी से जो उदगाता उदगीत गाता है, यज्ञशाला में उदगीत गा रहा है उदगान गा रहा है वेदमन्त्रों की ध्वनि के सहित वह ओ३म् का उच्चारण मन्त्र से पूर्व करता है क्योंकि जितना भी एक-एक अक्षर है, वेदमन्त्र में, वह ओ३म् रूपी सूत्र में पिरोया जाता है इसी प्रकार जितना भी संसार का ज्ञान है अथवा विज्ञान है कर्मकाण्ड है वह सब ओ३म् रूपी सूत्र में पिरोया हुआ है जैसे नाना प्रकार के लोक-लोकान्तर हैं, जैसे यह पृथ्वी है, इस पृथ्वी का जो सूत्र हैं वह सूत्र सूर्य है और सूर्यों का जो सूत्र है वह बृहस्पति है और बृहस्पति का जो सूत्र है वह आरूणि मण्डल है।

सोऽयमात्माध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रं पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति ॥ माण्डुक्योपनिषद १.८

पदार्थः (सः) इसलिये (अयमात्मा) यह जीव के भीतर वास करने वाला आत्मा (अक्षरम्) नाश रहित (ओंकार) ओ३म् है (अधिमात्रं) मात्रा इनसे बताया गया (पादाः) अर्थात् भागों से विभाजित करके (मात्रा) मात्रा से विभाग करके (मात्राश्च) मात्रा में (पादाः) पाद है (अकारः) अकार (उकारः) उकार (मकारः) मकार।

जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राप्तेरादिमत्त्वाद्वाप्नोति ह वै सर्वान्कामानादिश्च भवति य एवं वेद ॥ माण्डुक्योपनिषद १.९

पदार्थः (जागरितस्थानः) जाग्रत दशा का अभिमानी जीव में व्यापक (वैश्वानरः)

वैश्वानर नाम वाला (अकारः) अकार (प्रथमा) प्रथम (मात्रा) सर्व अक्षरों में व्यापक (आप्तेः) पाना (आदिमत्त्वात्) सब अक्षरों में पहला होने से (आप्नोति) प्राप्त होता है (ह वै) निश्चय करके (सर्वान् कामान्) सपूर्ण इच्छाओं का (च) भी (भवति) होता है (यः) जो (एवं) इस प्रकार (वेद) जानता है।

नान्तःप्रज्ञं नबहिःप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं नप्रज्ञानघनं नप्रज्ञं नाप्रज्ञम् । अदृश्यमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ॥ माण्डुक्योपनिषद १.७

पदार्थः (नान्तःप्रज्ञं) भीतर की ओर ज्ञान नहीं बुद्धि नहीं जाती (नोायतःप्रज्ञं) न दोनों ओर भीतर बाहर बुद्धि जाती है (न प्रज्ञानघनं) न अंधेरे की ओर एक ही ज्ञान होता है (न) नहीं (प्रज्ञं) प्राप्त किया हुआ ज्ञान (न) नहीं (अप्रज्ञं) ज्ञान की जड़ता (अदृष्टम्) नेत्रों के देखने योग्य नहीं (अव्यवहार्यम्) व्यवहार दशा से रहित (अग्राह्यम्) पकड़ने योग्य नहीं (अलक्षणम्) जिसका लक्षण इन्द्रियों से जाना नहीं जाता (अचित्यम्) मन की कल्पना शक्ति जिसकी सीमा को नहीं पा सकती (अव्यपदेश्यम्) जो किसी नाम के कहने से ध्यान में नहीं आता (एकात्मप्रत्ययसारं) किसको एक आत्मा ही जानने का अधिकारी है (प्रपञ्चोपशमं) बाहर पाञ्चभौतिक ज्ञान से एक होकर (शान्तं) जो शान्त अर्थात् विक्षेप रहित है (शिवम्) जो कल्याणकारी और शरीर, मन और प्राणों के धर्म से रहित है (अद्वैतं) अनुपम (चतुर्थं) चौथा (मन्यन्ते) विचार करते या मानते हैं (स आत्मा) वह जीवात्मा है (सः) वह (विज्ञेयः) जानने योग्य है।

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैव संविशत्यात्मनात्मानं य एवं वेद ॥ माण्डुक्योपनिषद १.१२

पदार्थः (अमात्रः) जिसके लिये कोई मात्रा नहीं (चतुर्थः) चतुर्थ पाद (अव्यवहार्यः) जिस पर कोई व्यवहार नहीं हो सकता (प्रपञ्चोपशमः) जहां पहुंचकर यह प्रपञ्च अर्थात् अज्ञान दूर हो जाता है (शिवः) कल्याणकारी-क्षुधा, तृषा, शोक, मोह,

बुढ़ापे और मौत से रहित (अद्वैतः) अनुपम (ओंकारः) ओंकार है (आत्मा) जीवात्मा (एव) है (संविशति) व्याप्त होता है (आत्मना) परमात्मा से (आत्मानं) आत्मा को (एवं) इस प्रकार (वेद) जानता है द्विवचन ग्रन्थ समाप्तिसूचक है।

आत्मा की चार अवस्था_जाग्रत_स्वप्न_सुषुप्ति_तुरीय

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

चतुर्थ अवस्था-तुरीय अवस्था

परन्तु एक महान अवस्था आ करके जिसको हमारे योगियों ने देखो, समाधि अवस्था कहा है जिसको वहकड़ी वाणी भी कहते हैं, जिसको प्राण अवस्था भी कहते हैं, शरीर की ऐसी गति बन करके, उस शरीर से आत्मा का उत्थान हो करके, अन्तरिक्ष मण्डल में, जहाँ सूक्ष्म शरीर वाली महान आत्माओं के सत्संग के द्वारा, उस शरीर द्वारा तुम्हारी आकाशवाणी मृत मण्डल में पहुँचेगी।

इस मानव शरीर में तीन नाड़िया हैं, इडा, पिंगला, सुषुम्ना या गंगा, यमुना, सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हैं जब मानव योगाभ्यासी बन कर मूलाधार में ध्यान करके रमण करता है तब उसको मृत्यु लोक की गंगा का ज्ञान होता है इसके पश्चात जब आत्मा नाभिचक्र में और हृदय चक्र में ध्यानावस्था में पंहुचता हैं, तब उसे आकाश गंगा का ज्ञान होता है, जब योगाभ्यासी आत्मा समाधि अवस्था में घ्राणेन्द्रिय चक्र में ध्यान लगाता हैं तब वह त्रिवेणी में पंहुच जाता हैं। या त्रिवेणी का साक्षात्कार करता है, बेटा! इससे आगे चलकर आत्मा जब ब्रह्मरन्ध्र में पंहुच जाता है, तब उस योगी आत्मा को ब्रह्मलोक की गंगा का ज्ञान होता हैं।

जब साम्य हो जाती है तब निद्रा की अवस्था में मन बुद्धि और आत्मा के सहित हम परमपिता परमात्मा से मिलान करते हैं। तो मुनिवरों! जब याज्ञवल्क्य ने ऐसा कहा, उन्होंने कहा कि हमारे शरीर में ओज क्या है? ऋषि ने कहा कि हमारे शरीर में ओज ब्रह्मचर्य है। उन्होंने कहा कि क्या यह ब्रह्मचर्य पृथ्वी का ग्राह है? उन्होंने कहा कि यह पृथ्वी का ग्राह नहीं है, यह इस प्रकृति का ओज है और जहाँ यह ब्रह्मचर्य प्रकृति का ओज है। पृथ्वी का हमारे यहाँ वसुन्धरा

कहा जाता है, क्योंकि यह संसार को बसाने वाली है। वेद ने इसे वसुन्धरा कहा है।

मेरे प्यारे! ऋषिवर! आत्मा की जो विवेचना है आत्मा का जो ज्ञान है वह इस प्रतिभा में रमण करता रहता है मेरी पुत्री का हृदय गद् गद् हो गया और उसने कहा कि प्रभु यह जो मृगराज हमारे आसन पर आ जाते हैं क्या इनको भी स्वप्न आता है क्या ये भी जागरूकता में रहते हैं हे पुत्रवत यदि जागना है सुषुप्ति और स्वप्न है यह सभी प्राणी मात्र की योनि के साथ में लगा हुआ है क्योंकि चित्त के संस्कारों में प्रतिभा कृत होती रहती हैं उस सयम मेरी बालिका ने जो बहुत ही सूक्ष्म विषय को कहा था।

उस समय मेरी बालिका ने कहा प्रभु! इससे आगे इस आत्मा के स्वरूप का क्या बनता हैं इसका आप मुझे और निर्णय कराईए तब मैंने कहा कि जब ये प्राण भी साथ मे नही होता मानो प्राण से आगे आत्मा का क्या होता है तो आत्मा का स्वरूप एक चेतना होती हैं चेतना में कारण ही मानव का शरीर जीवित रहता है चेतनावत रहता हैं।

जब यह वाक्या समीप आया तो उन्होंने कहा प्रभु! इस वाक्य को मैं कैसे जानूं यह जो मुझे प्रत्यक्ष निर्णय कराईए मैं इसको अन्तर्द्वन्द्व में दृष्टिपात करना नही चाहती। जब मैंने एक वाक्य कहा था कि हे पुत्री यह विषय तो ऐसा है जिसको अनुभव किया जा सकता है उन्होंने कहा तो इसका मुझे अनुभव कराईए अन्यथा मैं इसको स्वीकार नही कर पाऊंगी।

जब मुनिवरों! देखो, यह मन इन्द्रियों के साथ बुद्धि में प्रवेश करता है, तो बुद्धि के भेदन बन जाते हैं। सबसे प्रथम बुद्धि उसके पश्चात मेधा, मेधा संसार की रचना करने लगता है, और ऋतम्भरा जान करके मौन हो जाता है। और प्रज्ञा मानो देखो, प्रभु का दर्शन करने लगता है। तो मेरे प्यारे! देखो, बुद्धि के तीन चार प्रकार के बुद्धि, मेधा, ऋतम्भरा और प्रज्ञावी इसे कहा जाता है। कहीं कहीं

इसी को मानो देखो, ऋतम्भरा के रूप में वर्णन किया गया है, तो मेरे प्यारे! देखो, यह ब्रह्म की धारा में भी रमण करता है और देखो, ब्रह्म की धारा में क्यों क्योंकि अमृतं ब्रह्मे यह चित्त का जो मण्डल है, मानो देखो, बुद्धि चित्त में प्रवेश कर जाती है, और बुद्धि देखो, मन, बुद्धि, चित, अहङ्कार यह चित्त भी अहङ्कार में प्रवेश जब कर जाता है तो मेरे प्यारे! उस समय कौन जागता है। प्राण के साथ देखो, यह प्राण के साथ में यह आत्मा इस चरेवेति गमन करता रहता है। उस समय केवल श्वांस गमन कर रहा है। वह श्वासों का मनका बन जाता है। तो मेरे प्यारे! देखो, उस समय मानव कहता है, मैं ऐसा सुषुप्ति में चला गया अरे, मुझे कोई भान नही रहा संसार का मुझे कोई ज्ञान नही रहा है तो बेटा! देखो, मुझे एक दूसरे में रत्त हो करके और केवल प्राण और आत्मा का ही दोनों का सन्निधान मात्र से श्वांस की गति चल रही है। मेरे पुत्रों! देखो, एक दूसरे में ओत प्रोत हो जाते हैं तो महात्मा कुक्कुट ने कहा रावण यह तो आत्मा का स्वरूप है। परन्तु देखो, जिस समय यह प्राण के साथ आत्मा गमन करता है, यदि उसी को हम अभ्यस्त हो करके प्राण के द्वारा जब धारणा, ध्यान, समाधि में प्रवेश कर जाते हैं। तो उसको तुरीय अवस्था कहते हैं तो मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने इस प्रकार जब वर्णन किया तो उन्होंने कहा सम्भवं ब्रव्हे कृतं मानो देखो, वही कृतं कहलाता है, वह आत्मा का सन्निधान मात्र है। तो मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने कहा रावण यह चार अवस्था इस मानव शरीर की यह पञ्च महाभूतों का यह पिण्ड है। इसमें आत्मा अपना वास कर रहा है, और आत्मां ब्रव्हे आत्मा का लोक कहलाया जाता है। जिसे गृह और गृह स्वामिनी एक गृह में रहते हैं। परन्तु उसी प्रकार आत्मा का यह पञ्च महाभूतों वाला एक लोक कहलाता है, गृह कहलाता है, और वह उसी में रत्त रहता है। तो मेरे प्यारे! देखो, यह वार्ता हो रही थी, उन्होंने कहा हे भगवन! हे राजन! तुम्हें प्रतीत है, क्या देखो, प्रत्येक मानव अपने मे यह चाहता है, मैं

मोक्ष को चला जाऊं, साधक साधना करने वाला मोक्ष में प्रवेश करना चाहता है। तो मानो देखो, मेरे जो एक मेरे मानो देखो, लगभग पन्द्रहवें मेरे जो महापिता जो रेणकेतु मानो भारद्वाज थे मानो एक समय उनके हृदय में यह कामना जागी क्या मैं साधक बन करके अपने चित्त के मण्डल को दृष्टिपात करना चाहता हूँ, इसमें जो संस्कार विद्यमान हैं। उन संस्कारों को गणना में लाना चहता हूँ। तो जब वह देखो, अपने में अन्न का पान किया अपने उस अन्न को पान किया जिस अन्न पर किसी का अधिकार नही था, और कहीं कहीं वह जब क्षुधा लगती तो वह प्राणायाम खेचरी मुद्रा के द्वारा वह प्राण देखो, छः छः माह तक मानो देखो, इस प्रकार वर्ण गएं, तो वह चौरासी वर्ष तक उन्होंने इस प्रकार की साधना की और चौरासी वर्ष की साधना में वह लगभग बेटा! देखो, एक लाख बाणव हजार जन्मों के मुनिवरों! देखो, अपने में संस्कारों को साक्षात्कार कर पाए। जबकि अन्तःकरण में करोड़ों जन्मों के संस्कार होते हैं। तो मेरे प्यारे! देखो, उन संस्कारों वह जागरूक कर पाए, तो वेद के ऋषि ने यह विचारा अपना मन्तव्य दिया कि मोक्ष कहते हैं।

तुरीय अवस्था

सलिल एको द्रष्टाद्वैतो भवत्येष ब्रह्मलोकः सम्राडिति हैनमनुशशास याज्ञवल्क्य एषास्य परमा गतिरेषास्य परमा सम्पदेषोऽस्य परमो लोक एषोऽस्य परम आनन्द एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति॥ बृहदारण्क्योपनिषद ४.३.३२

पदार्थः (याज्ञ०-सम्राट् सलिलः एकः) राजन्! (वह परमात्मा) समुद्र के समान अर्थात् एक (द्रष्टाः अद्वैतः एषः) साक्षी (ब्रह्मलोकः भवति) अद्वितीय है यही (मुक्तात्मा के लिए) ब्रह्मलोक होता है। (इति ह याज्ञवल्क्यः) ऐसा प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य ने (एनम् अनुशशास) इस (राजा) को उपदेश दिया (अस्य एषा परमा गतिः) इस (जीव) की यह (ब्रह्म-प्राप्ति) परम गति है। (अस्य एषा परमा

सम्पद्) इसी यही सर्वोत्तम सम्पत्ति है, (अस्य एषः परमः लोकः) इसका यही परम लोक है, (अस्य एषः परमः आनन्दः) इसका यह सर्वोत्कृष्ट आनन्द है (एतस्य एव आनन्दस्य मात्रां) इसी आनन्द के एक अंश को ले (अन्यानि भूतानि उपजीवन्ति) कर अन्य समस्त प्राणी जीते हैं।

आत्मा की चार अवस्था_जाग्रत_स्वप्न_सुषुप्ति_तुरीय

व्याख्याः शृङ्गी ऋषि कृष्ण दत्त जी महाराज

स्वप्नावस्था

जैसे जागरूक में आत्मा का सम्बन्ध नेत्रों से विशेषकर रहता है उसके पश्चात स्वप्न अवस्था में आत्मा का सम्बन्ध मन के द्वारा रहता है और सुषुप्ति अवस्था में इस आत्मा का सम्बन्ध प्राण के द्वारा होता है। प्राण के द्वारा गमन करता रहता है और जीवन का सर्वत्र व्यापार शान्त हो जाता है। इसी प्रकार तीन प्रकार की विशेष समाधियों का वर्णन आता है जैसे जागरूक होते हैं और जागरूक समाधि निर्विकल्प मानी गई है वह ब्रह्माण्ड का विस्तार रूप धारण करना है। जैसे स्वप्न में मानव शरीर द्वारा पत्नीयां नहीं होती राष्ट्र नहीं होता। परन्तु यह मानव स्वतः उनका निर्माण करता रहता है। स्वप्न अवस्था में द्रव्य नहीं होता परन्तु द्रव्य मानव के द्वारा है। वह मन की प्रतिभा है जो संसार की एक नवीन रचना करने लगता है। निर्धन से धनवान बन जाता है और धनी से निर्धन बन जाता है। तुम्हें स्मरण होगा राजा जनक को एक स्वप्न हुआ था। वह ऐसा ही स्वप्न था कि उसी स्वप्न के कारण वह निर्धन बन गया था। नाना अकृत ब्राह्मणों की सभा की। उसमें नाना शास्त्रार्थ हुए, विचार विनिमय हुए प्रश्नों का उत्तर देने के तत्पर होने लगे। एक नवीन रचना होने लगती है।

कण्ठ में जो शब्दों की रचना हो रही है, शब्द आ रहा है, शब्दों की रचना हुई श्वांस के साथ में शब्दों की रचना है, वाक्य के रूप में शब्दों की रचना हैं। आन्तरिक जगत में शब्दों की रचना है। स्वप्न अवस्था है, तो उसमें भी शब्दों की रचना हो रही है। वह सूक्ष्म अङ्कुरों को साकार रूपों में भोगता रहता है। पत्नीयों का निर्माण करता रहता है। वह चक्र एक ऐसा चक्र है, जिसको जानने के पश्चात मानव जो स्वप्न में साकार रूप है। उसका जागरूकता के समान साकार रूप बन जाता है। यह जो आत्मा है यह जो ज्ञान स्वरूप है और ज्ञान स्वरूप होने के नाते नाना

प्रकार की प्रवृत्तियां हैं जो तुम्हें सुषुप्ति अवस्था में स्वप्न अवस्था में जागृत अवस्था में बाह्म जगत को दृष्टिपात करते हो।

इसी प्रकार जो मानव परमात्मा को व्याप्क रूप में दृष्टिपात करता है जिसको साम्य दृष्टि कहते हैं इस दृष्टि में संसार को दृष्टिपात करने लगता है तो उसके द्वारा पाप और पुण्य भी नहीं होता है। आत्मा का सम्बन्ध केवल प्राण के द्वारा रहता है। परन्तु आज मुनिवरों! मैं प्रवेश की चर्चा नहीं करूंगा। विचार यह देना चाहता हूँ कि मानो देखो, अपने चिन्तन की अवस्थित ब्रह्म लोक में प्रवेश करता है। मेरे प्यारे! जब यह निद्रा में तल्लीन होता है, सुषुप्ति में चला जाता है तो मुनिवरों! प्रत्येक प्राण के साथ मानो प्राण ही गति कर रहा है। तारतम्य लग रहा है। सुषुप्ति अवस्था में वह चिन्तन करे या न करे परन्तु उसका महापुरुष का ऐसा तारतम्य चल रहा है, जैसे माला में मनके होते हैं, और माला के मनके एक सूत्र में पिरोए जाते हैं। तो यह मन की नाना प्रकार की चञ्चलता है। वह प्राण रूपी सूत्र में ओत प्रोत हो जाती है। जब वह प्राण रूपी सूत्र में ओत प्रोत होती है, तो प्राण रूपी क्षेत्र में प्रवेश करके उसका चिन्तन प्रारम्भ रहता है। चिन्तन की गतियां चलती रहती हैं।

स्वप्नावस्था

अत्रैष देवः स्वप्ने महिमानमनुभवति । यद्दृष्टं दृष्टमनुपश्यति श्रुतं श्रुतमेवार्थमनुश्रृणोति देशदिगन्तरैश्च प्रत्यनुभूतं पुनः पुनः प्रत्यनुभवति दृष्टं चादृष्टं च श्रुतं चाश्रुतं चानुभूतं चाननुभूतं च सच्चासच्च सर्वं पश्यति सर्वः पश्यति ॥ प्रश्नोपनिषद ४.५

पदार्थः (अत्र) यहां। (एषः) यह। (देवः) प्रकाशक जीवात्मा। (स्वप्ने) स्वप्न में। (महिमानम्) अपनी महिमा को। (अनुभवति) अनुभव करता है, जानता है। (यत्) जो। (दृष्ट दृष्ट) देखा हुआ है और इसको देखता हुआ। (अनुपश्यति) मालूम करता

है अर्थात् मित्र, शत्रु, स्त्री, पुत्र इत्यादि को प्रत्यक्ष की भांति मालूम करता है। (श्रुतं) सुनते हुए। (एव) ही। (अर्थम्) अर्थ को एक बार जिसके देखा या सुना है, बार-बार। (अनुश्रृणोति) फिर सुनता है। (देश दिगन्तरैश्च) दूसरे देश और दूसरी दिशा की वस्तुओं को। (प्रत्यनुभुत) अनुभव किये हुए की। (पुनः पुनः) बार-बार। (प्रत्यनुभुवति) अनुभव करता है अर्थात् जानता है। (दृष्टं चादृष्टं) चाहे इस कारण देखने योग्य हो या न हो। (श्रुतंचाश्रुतंच) चाहे इस जन्म में सुना हो चाहे इस जन्म में न सुना हो। (अनुभूतं चाननुभूतं) चाहे इस जन्म में उसका अनुभव किया हो अथवा न किया हो। (सच्चासच्च) चाहे वह सत् हो या न हो। (सर्व) सबको। (पश्यति) देखता है। (सर्व) सब तरह की वस्तुओं को। (पश्यति) देखता है।